International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(5): 37-40

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(5): 37-40
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 13-07-2015
Accepted: 19-08-2015

डॉ0 गीता परिहार
एसो0 प्रोफेसर, अध्यक्षा, संस्कृत विभाग,
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज,
मुरादाबाद, उत्तर, प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ0 गीता परिहार
एसो0 प्रोफेसर, अध्यक्षा, संस्कृत विभाग,
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज,
मुरादाबाद, उत्तर, प्रदेश, भारत

पंचतन्त्र में वर्णित नैतिक मूल्यों की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

डॉ0 गीता परिहार

प्रस्तावना

चिरन्तन काल से मानव व कथा साहित्य का सम्बन्ध है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि संस्कृत साहित्य तो कथा साहित्य का आगार है, जिसका प्रभाव न केवल भारत में दिखाई देता है, अपितु भारतेतर साहित्य पर भी इसकी अमिट छाप दिखाई देती है। वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य का अध्ययन करने के उपरान्त हम देखते हैं कि कथा व आख्यान न केवल समय व्यतीत करने का माध्यम है अपितु व्यावहारिक उपदेश देने तथा हृदय व मस्तिष्क का प्रभावित करने का एक सशक्त माध्यम रहा है।

राजा अमरशक्ति के पुत्र, जो सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन करने पर भी लोकनीति व राजनीति से परे थे। उन्हें 'पंचतन्त्र' लोककथा साहित्य के माध्यम से मात्र छः मास में सर्वज्ञान सम्पन्न कर देना ही पंचतन्त्र की महत्ता का एक ठोस व सशक्त प्रमाण है। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ की महत्ता और प्रासंगिकता दोनों ही स्वतः सिद्ध हो जाती है। आज मैं प्रस्तुत शोध पत्र में पंचतन्त्र में वर्णित नैतिक तत्वों की उपयोगिता व वर्तमान समय में प्रासंगिकता पर चर्चा करूंगी।

सद् आचरण का पालन करना ही 'सदाचार' कहलाता है। नीतिशास्त्रकारों ने नवोदय पीढ़ी में सदाचार के गुण निहित करने के उद्देश्य से नीतिक था साहित्य में सदाचार का प्रतिपादन किया है। इसी तथ्य को आचार्य विष्णु शर्मा ने राजा अमर शक्ति के पुत्रों को भी सदाचार से अवगत कराने हेतु छोटी–छोटी नीति कथाओं के माध्यम से, पंचतन्त्र में परोपकार, निर्लोभ, अहिंसा, अतिथि–सत्कार, इन्द्रिय–निग्रह आदि सदाचार से सम्बन्धित गुणों का प्रतिपादन किया है।

पंचतन्त्र के प्रथम तन्त्र मित्रभेद में आचार्य विष्णु शर्मा 'परहित' की भावना का निर्देश देते हुए लिखते हैं –''संसार में सैकड़ों मनुष्य जीवन यापन करते हैं, परन्तु जो मनुष्य दूसरों के लिए जीता है, वह धन्य है जिस व्यक्ति के चित्त में अन्यों के प्रति परोपकार की भावना निहित होती है, उसी का जीवन वास्तविक जीवन है। इस सार में अनेक व्यक्ति जीवन यापन करते हैं लेकिन जीवन उसी का श्रेष्ठ है जिसके जीने से बहुत से लोग जीते हैं।''[1] पंत्रतन्त्रकार ने उपकारी मनुष्यों का वर्णन करते हुए कहा है –''मेघ के समान उपकारी सज्जन तो कोई विरले ही होते हैं।'' सदैव अपना कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को अपने मित्र की बातों पर ध्यान देना चाहिए मित्र के बताये हुए पथ का अनुसरण करना चाहिए, जो व्यक्ति मित्र के कहे अनुसार विचरण नहीं करता तो उसकी दुर्दशा भी उसी कछुए की भाँति होती है जिसने अपने मित्र हंसी की बात नहीं मानी और मृत्यु को प्राप्त हो गया।[3] दूसरों का उपकार करना पुण्य तथा दूसरों को दुःख देना ही पाप है। जो कार्य अपने लिए अहितकर हो उसे दूसरों के प्रति भी नहीं करना चाहिए।[4].

संसार में जो व्यक्ति दूसरों के लिए अपने जीवन को समझकर जीवन यापन करता है वह धन्य है। मनुष्य को जीवन का लक्ष्य परहित की भावना को ही बनाना चाहिए। 'परोपकार' का उपदेश प्राचीन समय से ही ऋषि–मुनि देते आये हैं। परोपकार के लिए ही दधीचि ने अपनी अस्थियाँ भी देवताओं की रक्षा हेतु प्रदान करवा दी थी। परोपकारी मनुष्य इहलोक में सुख व यश प्राप्त कर परलोक में भी सुख प्राप्त करते हैं।

'निर्लोभ' के विपरीत पहलू लोभ के विषय में विष्णु शर्मा लिखते हैं कि– ''किसी भी वस्तु पर अपना एकाधिपत्य करने की चेष्टा, स्वयं उससे लाभ न उठाने पर अन्य लोगों को भी उससे लाभ न उठाने देना ही लोभ कहलाता है। स्वयं पंचतन्त्रकार ही निर्लोभता की साक्षात् मूर्ति है तथा आत्मशक्ति का भी प्रतीक है।''[5] विष्णु शर्मा ने संसार में लोभ को ही सब अनर्थो का जनक माना है।[6] विष्णु शर्मा तृष्णा को बताते हुए लिखते हैं ''तृष्णा में पड़े व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता है।''[7] जैसे लोभ के वशीभूत होकर ही केकड़ा द्वारा बगुला मारा गया था।[8]

'लोभ' से ही मनुष्य अकार्यो को करने में भी हिचकिचाता नहीं है। लोभ मनुष्य को पतनोन्मुख बना देता

है। लोभी व्यक्ति अपने परिवार, मित्र तथा बन्धु–बान्धवों की भी चिन्ता नहीं करता। लोभी व्यक्ति का सब कुछ नष्ट हो जाता है। व्यक्ति को कदापि लोभ नहीं करना चाहिए। लोभ यदि करना है तो अध्यात्म का, विद्याध्ययन का करना चाहिए।

विश्व के सभी धर्मो में 'अहिंसा' ही परम धर्म है। मानव जीवन में जिस प्रकार से सत्य बोलना ही माननीय है उसी प्रकार अहिंसा भी सर्वोपरि है। अहिंसा सुख एवं शान्ति प्राप्त कराती है। श्रेष्ठ पुरूष सदैव अहिंसा व्रत का आचरण करते हैं। बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म में अहिंसा के दर्शन अधिकांशतः होते हैं। हमारे देश में अनेक पुरूषों ने अहिंसा का प्रचार किया। अहिंसा के बल पर ही हमें स्वराज्य की प्राप्ति हुई है। अहिंसा का जो पालन करता है वही भगवान का कृपा पात्र होकर सुख, शान्ति प्राप्त करता है।

भारतीय वाड्.मय में अहिंसा परम धर्म का उपदेश दिया गया है। सम्पूर्ण वैदिक वाड्.मय और दर्शनशास्त्र के मूल में अहिंसा त्रिविध रूप से अनिवार्यता श्रेयस्कर रही है। पंचतन्त्रकार अहिंसा का निर्देश देते हुए लिखते हैं कि–

''कठोर वचन कहने'' वाले दूत को भी मारना चाहिए।''[9] पंचतन्त्रकार लिखते हैं कि ''क्षुद्र, यूका, खटमल, डांस आदि प्राणियों को भी नहीं मारना चाहिए। जो मनुष्य हिंसक प्राणियों को मारता है वह निर्दयी कहलाता है और भीषण नरक को प्राप्त होता है, तथा जो अहिंसक पशुओं को मारता है उसका तो कहना ही क्या ? ऐसे व्यक्ति का तो सम्पूर्ण जीवन ही नरक बन जाता है।''[10]

मानव–जीवन में 'निर्भयता' परमावश्यक है। विष्णु शर्मा पंचतत्र में अतिथि–सत्कार के सन्दर्भ में बहुत सुन्दर उल्लेख प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि– ''यदि अतिथि शाम को भी किसी के घर आ जाता है और गृहस्थी अतिथि का भलीभाँति सत्कार करता है तो वह गृहस्थी देवता तुल्य हो जाता है।''[11] पंचतन्त्रकार ''कौलिक और रथकार की कथा'' में कौलिक द्वारा राजकन्या को शरणागत की रक्षा की महत्ता बताते हुए लिखते हैं–

शरणागत की रक्षा के लिए विपत्ति की प्राप्ति भी तेजस्वियों के लिए प्रशंसनीय है।[12] कोई अतिथि दूर मार्ग से चलकर गृह में उपस्थित हो तो उसका कदापि निरादर नहीं करना चाहिए तथा उसका उच्च रीति से सत्कार करना चाहिए। जो व्यक्ति अतिथि का सत्कार करता है, वह श्रेष्ठ गति को प्राप्त होता है।''[13] अतिथि सेवा करने से देवता और पिता प्रसन्न होते हैं।[14] जिस गृहस्थी के घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उस पुरूष के देवता भी, पितर भी मुख फेरकर चले जाते हैं।[15]

'अतिथि' चाहें किसी भी धर्म, जाति, प्रान्त या देश का हो वह आदरणीय ही होता है। महापुरूषों ने अतिथि को देवता तुल्य माना है। अतिथि सेवा ही सबसे बड़ी सेवा है। अतिथि किसी भी समय घर में प्रवेश करे सदा पूजनीय होता है। अतिथि निरादर करने योग्य नहीं होता अतएव अतिथि सदा से ही आदर करने योग्य कहा गया है। जो गृहस्थ अतिथि का आदर–मान सम्मान तथा सत्कार व भोजन और वस्त्रों से सन्तुष्ट करता है गृहस्थी स्वर्ग को प्राप्त करता है।

मानव जीवन में 'इन्द्रिय संयम' अभीष्ट सिद्धि के लिए परमावश्यक है। जिस पुरूष की इन्द्रियाँ वश में होती है। उसकी बुद्धि स्थिर होती है। संसार में इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना ही सबसे बड़ी विजय है। मनुष्य की इन्द्रियाँ वेगवान अश्व की भाँति इधर–उधर भागती रहती हैं परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति कुशल सारथी की भाँति अपनी इन्द्रियों का दमन कर उन्हें सतपथ पर चलाता है। इस प्रकार उचित–अनुचित का विवेक ही इन्द्रिय–निग्रह है।

पंचतन्त्र में लोगों का जीवन चार वर्णो तथा जातियों में विभक्त था उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी व्यक्तिगत रूप से चार आश्रमों में भी विभक्त था– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। पंचतन्त्रकार व्यक्ति को पहली अवस्था में शान्त रहने को लिखते हैं–

पूर्वे वयसि यः शान्तः स शान्त इति मे मतिः।
धातुष क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते।।[16]

पहली शान्त अवस्था से तात्पर्य इन्द्रिय–निग्रह से है। पहली अवस्था अर्थात् प्रारम्भिक समय से है जो ब्रह्मचर्य आश्रम से प्रारम्भ होती है। सबसे पहले इन्द्रियों को वश में करना और विद्याध्ययन करना ब्रह्मचर्य आश्रम में सिखाया जाता है। राजा अमरशक्ति के तीनों पुत्र भी प्रारम्भिक अवस्था में विद्याध्ययन करने आश्रम जाते हैं। दूसरा आश्रम गृहस्थ आश्रम है जिसमें रहकर व्यक्ति को अर्जन, यजन तथा दान इन तीन कर्त्तव्यों का पालन करना होता है। इन कार्यो को करके, व्यक्ति ऋषि ऋण और देव ऋण से मुक्त हो जाता है। गृहस्थाश्रम में रहने वाले व्यक्ति यज्ञ भी करते हैं। देवशर्मा अमावस्या के दिन यज्ञ करने के लिए कहता है–

आगमिन्यमावस्यायहिं यक्ष्यानि यज्ञम्।

विष्णु शर्मा आत्मसंयम का वर्णन करते हुए बुद्धि की महत्ता को स्पष्ट करते हैं कि– ''आत्मसंयम में बुद्धि का सहयोग परमावश्यक है–

यस्य बुद्धिर्बलं तस्य निर्बुद्धस्तु कुतो बलम्।
वने सिंहो मदोन्मतः शशकेन निपातितः।।[17]

इसी बात को पंचतन्त्रकार 'भारसुक–कथा'' में स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति को किसी भी कार्य को करने के लिए धैर्यहीन तथा विवेकहीन होकर कार्य करने पर सफलता प्राप्त नहीं होती। विष्णु शर्मा का मत है कि गाय समय पर ही दुही जाती है और जिस प्रकार फूल, फल देने वाली लता समय पर ही फल देती है इसी प्रकार व्यक्ति के कार्य भी समय पर ही फलीभूत होते हैं।[18] संसार में मनुष्य को सफलता प्राप्त करने के लिए इन्द्रिय–निग्रह करना नितान्त आवश्यक है।

तात्पर्य है कि मनुष्यों को इन्द्रियों को वश में करके उचित समय की प्रतीक्षा कर कार्य सम्पन्न करने चाहिए। विष्णु शर्मा का आशय भी यही है कि समयानुसार ही व्यक्ति को इन्द्रियों को नियमन करके कार्य सम्पन्न करने चाहिए ।

पंचतन्त्रकार राजपुत्रों को इन्द्रिय–निग्रह के विषय में बताते हुए लिखते हैं कि– ''जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं रखते, वे मछलियों के समान मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।''[19] यदि मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में कर ले तो अपूर्व शान्ति का अनुभव होता है। यदि व्यक्ति सर्वप्रथम अपने मन को वश में कर ले तो सभी इन्द्रियाँ स्वयं ही नियन्त्रित हो जाती हैं। मन चंचल होता है, मन की गति अति तीव्र होती है, मन को वश में करने से शेष इन्द्रियाँ स्वयं वशीभूत हो जाती हैं। ऋषियों ने इच्छाओं की निवृत्ति को ही मन की शान्ति कहा है।[20]

इस संसार में जिसकी इन्द्रियाँ वश में रहती हैं वही पुरूष महान् होता है। इन्द्रियों को वश में रखने वाला मनुष्य ही कुमार्ग का गमन न कर सन्मार्ग का विचरण करता हुआ जीवन व्यतीत करते हुए दूसरों को भी हितकर उपदेश देकर इन्द्रियों को वश में रखने हेतु शिक्षा देता है। मनुष्य का मन, चंचल होता है, अतः सर्वप्रथम मनुष्य को मन वश में करना चाहिए। मन को वश में करने से सभी इन्द्रियाँ वश में हो जाती है।

मनुष्यों को अपने छोटों का भी सम्मान करना चाहिए क्योंकि समय आने पर बड़ों को छोटों से भी काम पड़ जाता है। छोटे व्यक्ति भी बड़े व्यक्तियों के कार्य करने में समर्थ होते हैं। रामायण में एक छोटी सी गिलहरी भी सेतु पुल को बनवाने में श्रीराम की सहायता करती है। देवताओं को स्वर्ग प्राप्त कराने के लिए चूहे आदि जानवरों ने भी सहायता प्रदान की है। वेद इसके साक्षी हैं। विद्वता तथा बुद्धि से सम्पन्न शूद्र भी माननीय होता है। यदि समय पर क्षुद्र की बुद्धि द्वारा कार्य सम्पन्न होते हैं तो प्रशंसनीय है, इसलिए अपने से छोटों का कदापि निरादर नहीं करना चाहिए ।

पंचतन्त्रकार विद्वता के विषय में अपने ग्रन्थ में स्पष्ट करते हैं कि– ''संसार की छोटी से छोटी वस्तु को भी तुच्छ नहीं समझना चाहिए। संसार में उत्पन्न छोटा सा तिनका डूबते हुए व्याकुल लोगों का

सहारा होता है। मध्यम तथा निम्न व्यक्ति भी कभी–कभी उत्तम व्यक्ति का हित करने वाला होता है, इसलिए तुच्छ व्यक्ति का कभी भी अपमान नहीं करना चाहिए।''[21] मान को सर्वोच्च बताते हुए पंचतन्त्रकार लिखते हैं–

''दारिद्रयस्य परा भूतिर्यन्मानद्रविणाल्पता।
जरद्गवधनः शर्वस्तथापि परमेश्वरः।।[22]

जो व्यक्ति बुद्धिमान होता है उस व्यक्ति का सब जगह सम्मान होता है। इसके विपरीत राजा को केवल अपने ही देश में सत्कार होता है। धनी व्यक्ति से अधिक विद्यावान व्यक्ति का सम्मान होता है। विष्णु शर्मा ने विद्वता की महत्ता प्रतिपादित की है।[23]

विद्वानों ने तुच्छ व्यक्ति को भी सम्मान के योग्य कहा है। यदि व्यक्ति बुद्धि सम्पन्न है तो आदर करने के योग्य होता ही है। बुद्धिमान व्यक्ति का सब जगह सम्मान होता है और धनी का सम्मान केवल उसके राज्य तक ही सीमित होता है।

जो वस्तु जैसी है उसका वैसा ही वर्णन करना सत्य है। मानव जीवन में 'सत्य' का बड़ा ही महत्व है। पंचतन्त्रकार राजा से सत्य वचन बोलते हुए कहते हैं कि– ''तं राजानमूचे–'देव, श्रूयतां में तथ्यवचनम्''[24] पंचतन्त्रकालीन समाज में सत्य का बड़ा ही महत्त्व था। धर्मशास्त्रकार गौतम ने मनुष्य को मनसा, वाचा, कर्मणा त्रिविध सत्य स्वभाव की शिक्षा दी है।[25] आचार्य विष्णु शर्मा प्रिय बोलने वालों के सन्दर्भ में लिखते हैं कि–

एकेषां वाचि शकुवदन्येषां हृदि मूकवत्।
हृदि वाचि तथान्येषां वल्गु वल्गुन्ति सूक्तयः।।[26]

विष्णु शर्मा के अनुसार सत्यवादी शत्रु भी मित्रता व सन्धि करने योग्य होता है।[27] अतः पंचतन्त्रकालीन समाज में सत्य के प्रति निष्ठा थी।

अतः कहा जा सकता है कि सत्य का पालन करना पंचतन्त्रकार को प्रमुखतः प्रिय था। सत्य का अनुकरण करता हुआ ही व्यक्ति असाध्य वस्तु को भी प्राप्त कर लेता है। सत्य के माध्यम से ही व्यक्ति ईश्वर को भी प्राप्त कर लेता है। भगवान मनु ने दस धर्मो में एक धर्म सत्य को कहा है। तीनों लोकों में सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं हैं जो मनुष्य सत्य बोलता है वह निर्भीक होता है वह पाप कर्मों के प्रति प्रवृत्त नहीं होता। सत्यवादी पुरूष ही समाज एवं राष्ट्र में सम्मान पाने के अधिकारी होते हैं।

आचार्य विष्णु शर्मा पंचतन्त्र में 'धैर्य' के विषय में स्पष्ट करते हुए लिखते हैं ''इस संसार में जो पुरूष सन्तोषी है वह ही सर्वत्र सुख का अनुभव करता है। सुख सन्तोषरूपी अमृत से तृप्त हुए शान्तचित्त पुरूषों को ही प्राप्त होता है अतः मनुष्य के लिए सन्तोष ही उत्तम खजाना है।''[28] व्यक्ति को चाहिए कि धैर्य धारण कर पापी तथा नीच व्यक्ति से कदापि घृणा न करे बल्कि उसके साथ रहे तथा अपने अभ्युदय की प्रतीक्षा करें। कठोर वचन बोलने वाले व्यक्ति की तरह बोलकर मनुष्य को अपना अहित नहीं करना चाहिए अर्थात् वज्ररूपी वचन बोलने वाले व्यक्ति के समान व्यवहार कदापि नहीं करना चाहिए।[29] जो व्यक्ति शक्तिशाली होते हुए भी धैर्य धारण कर अपने मन को दूसरों के समक्ष प्रकाशित न कर अपने कार्य की सिद्धि हेतु प्रयत्न करता रहता है उसे सफलता अवश्य ही प्राप्त होती है अतः अनेक कठिनाइयों को सहन करते हुए भी अपने लक्ष्य तक पहुँचने का कार्य करना चाहिए ।[30] धन के लोभी को इधर–उधर भटकने वाले पुरूषों को सुख प्राप्त नहीं होता, सुख तो सन्तोषरूपी अमृत से तृप्त हुए शान्तचित्त मनुष्यों को ही प्राप्त होता हैं।[31] लाभ तथा हानि प्राप्त होने पर मनुष्य को धैर्य का त्याग नहीं करना चाहिए। धैर्यवान पुरूष सम्पत्ति तथा विपत्ति में समान भाव से विचरण करते हैं।[32]

संसार में व्यक्ति अपने आचरणानुसार सज्जन तथा दुर्जन की श्रेणी में विभक्त किये जाते हैं। आचार्य विष्णु शर्मा दोनों के आचरणों को वर्णित् करते हुए लिखते हैं–

''दुष्ट मनुष्य परेशानियों के आने पर आसानी से कुकर्मो की ओर झुक जाता है तथा दूसरों को भी कष्ट पहुँचाता है। सज्जन पुरूष अनेक विपत्तियों के आने पर भी घबराते नहीं है तथा विपत्तियों का सामना साहस के साथ करते हैं।''[33] पंचतन्त्रकार दुष्ट मनुष्य के सन्दर्भ में लिखते हैं– ''किसी के प्रति जब दुष्ट व्यक्ति कठोर वचन बोलता है तो वह वचन विष की भाँति क्षति पहुँचाता है तथा शस्त्रों की भाँति चुभता है। कठोर वाणी हृदय को आहत कर मस्तिषक पर भी असहनीय प्रभाव डालती है।''[34] इस संसार में ऐसे लोग तो बहुत होते हैं जो अपना उपकार करने वालों के प्रति सद् आचरण करते हैं, परन्तु ऐसे बिरले ही होते हैं जो अहित करने वालों के प्रति भी सद्व्यवहार व नम्रता पूर्वक आचरण करते हैं,[35] पंचतन्त्रकार ने उपर्युक्त श्लोक में सज्जनों के विषय में संकेत दिया है।

दुष्ट व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से तो मधुर वचन बोलते हैं किन्तु परोक्ष में विष की भाँति जीवन को हानि पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। मनुष्य को कदापि दुष्ट व्यक्ति से मित्रता नहीं करनी चाहिए। सज्जन मनुष्य सदैव दूसरों का हित ही करते हैं तथा प्रत्येक के प्रति सदाचरण करते हैं। दुष्ट यदि अन्धकार है तो सज्जन उस अन्धकार को दूर करने वाला दीपक। सज्जन सदैव सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते है तथा सदैव पथप्रदर्शक का कार्य करते हैं।

आधुनिक समय में समाज में जो बुराईयाँ प्रचलित हैं जैसे स्वार्थ, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, ईर्ष्या, क्रोध, लोभ इत्यादि यदि इन समस्त बुराईयों को जड़ से मिटा देना चाहते हैं तो हमें क्रियान्वयन करना होगा नीति कथा साहित्य में प्रतिपादित नैतिक सिद्धान्तों का तथा भारतीय संस्कृति के तत्वों का । इन्हीं तत्वों व सिद्धान्तों पर चलकर हम फिर से सुदृढ़ व रामायणकालीन समाज की नींव डाल सकते हैं और फिर से भारत को एक बार सोने की चिड़िया बना सकते हैं।

नीति कथाओं में प्रतिपादित सिद्धान्तों को यदि आज व्यक्ति अपनाता है तो वह अपने परिवार तथा अपने देश के नागरिकों में अच्छे आदर्शों को स्थापित कर सकता है। नीति कथाओं में जो सदाचार, व्यवहार, त्याग, संयम, निर्लोभ इत्यादि की शिक्षा कथाओं के माध्यम से भी दी जाती है, यदि भारतीय समाज उन नियमों को लागू करे तो निश्चित रूप से भारत में अनेकता में एकता स्थापित होगी।

संदर्भः

1. पंचतन्त्र–मित्रभेद–श्लोक–23।
2. पंचतन्त्र–मित्रभेद–श्लोक–30।
3. पंचतन्त्र–मित्रभेद–श्लोक–344।
4. पंचतन्त्र–काकोलूकीयम्–श्लोक–103।
5. पंचतन्त्र–कथामुख–पृ0 5।
6. पंचतन्त्र–मित्रभेद–श्लोक–125।
7. पंचतन्त्र–मित्रसम्प्राप्ति–श्लोक–80।
8. पंचतन्त्र–मित्रभेद–श्लोक–232।
9. पंचतन्त्र– काकोलूकीयम्–श्लोक–89।
10. पंचतन्त्र– काकोलूकीयम्–श्लोक–105–106।
11. पंचतन्त्र–मित्रभेद–श्लोक–181।
12. पंचतन्त्र–मित्रभेद–श्लोक–227।
13. पंचतन्त्र–लब्धप्रणाशम्–श्लोक–4।
14. पंचतन्त्र–मित्रभेद–श्लोक–183।
15. पंचतन्त्र–लब्धप्रणाशम्–श्लोक–5।
16. पंचतन्त्र–मित्रभेद–श्लोक–176।
17. पंचतन्त्र–मित्रभेद–श्लोक–237।
18. पंचतन्त्र–मित्रभेद–श्लोक–245।
19. पंचतन्त्र–मित्रसम्प्राप्ति–श्लोक–3।
20. पंचतन्त्र–मित्रसम्प्राप्ति–श्लोक–159।
21. पंचतन्त्र–मित्रभेद–श्लोक–29।
22. पंचतन्त्र–मित्रसम्प्राप्ति–श्लोक–164।
23. पंचतन्त्र–मित्रसम्प्राप्ति–श्लोक–58।
24. पंचतन्त्र–कथामुख–पृ04।
25. गौतम–धर्मसूत्र–पृ0 91।
26. पंचतन्त्र–मित्रभेद–श्लोक–66।

27. पंचतन्त्र–काकोलूकोयम्–श्लोक–8।
28. पंचतन्त्र–मित्रसम्प्राप्ति–श्लोक–158।
29. पंचतन्त्र–काकोलूकीयम्–श्लोक–227।
30. पंचतन्त्र–काकोलूकीयम्–श्लोक–229।
31. पंचतन्त्र–मित्रसम्प्राप्ति–श्लोक–157।
32. पंचतन्त्र–मित्रसम्प्राप्ति–श्लोक–7।
33. पंचतन्त्र–मित्रसम्प्राप्ति–श्लोक–37।
34. पंचतन्त्र–काकोलूकीयम्–श्लोक–112।
35. पंचतन्त्र–लब्धप्रणाशम्–श्लोक–76।